eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

कबीरदास धर्मनिरपेक्षता और कबीर

[1]डॉ.अर्चना द्विवेदी
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सेठ आनंदराम जयपुरिया कॉलेज, कोलकाता

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

Abstract

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। मुसलमानों के रोजा, नमाज़, हज, ताजिएदारी और हिन्दुओं के तीर्थ, व्रत मंदिर आदि सबका उन्होंने विरोध किया। कर्मकांड की उन्होंने भर पेट निंदा की। बाहरी पाखंड के लिए उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म को वे आडंबर से परे एकमात्र सत्य मानते थे। कबीर समाज में मनुष्यत्व के विकास के लिए हृदय के धर्म अर्थात मानवीय भावों को लोकधर्म बनाने पर जोर देते हैं। इसलिए वे एक और ईर्ष्या, द्वेष, कपट, अहंकार आदि की आलोचना करते हैं तो दूसरी ओर प्रेम, करूणा, दया, उदारता आदि का विकास चाहते हैं।
बीज शब्द– सांप्रदायिकता, मनुष्यत्व, नाथपंथ, शाक्त मत।

Introduction

कबीर जिस समय भारतीय समाज में पैदा हुए थे, वह बहुत उथल पुथल का समय था। संस्कृति, धर्म और विचार की अनेक धाराएँ परस्पर टकरा रही थी। एक ओर हिन्दू समाज की भेदभाव जनित जाति व्यवस्था की संरचना थी जिसकी शक्ति का स्रोत शास्त्रीय धर्म था। इस धार्मिक संरचना का विरोध बौद्ध, जैन, शाक्त, सिद्ध और नाथ पंथ ने जमकर किया। दूसरी ओर इस्लाम था, जिसमें उग्रता थी। इस्लाम में धार्मिक समानता के बावजूद सामाजिक विषमता थी। इस उग्रता के विरूद्ध सूफियों ने प्रेम संदेश दिया। साधारण जनता दिग्भ्रांत धार्मिक भंवरजाल में फंसी हुई थी। हिन्दू जनता अपनी जाति व्यवस्था के भेदभाव और धार्मिक कर्मकांड की चक्की में फंसी हुई थी वहीं दूसरी ओर इस्लामिक राजसत्ता के शोषण का चक्र द्रुत गति से चल रहा था। इन समस्याओं के पाटों के बीच पिसती हुई जनता निरीह जनता को देखकर कबीर ने कहा–

"चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय।।"1

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे अतः जन साधाराण की इस दुर्दशा को देखकर उनके हृदय की जो छटपटाहट थी उसी ने उनकी तीक्ष्ण वाणी का रूप धरा। उनका तीव्र विश्वास था कि जिसका मन ही धार्मिक बाह्याडंबरों और मत–मतांतरों की बेड़ियों में जकड़ा हो वह पाँव की जंजीरे क्या तोड़ेगा। अतः नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फंसकर दीन हीन जीवन व्यतीत कर रहे लोगों को उन्होंने मुक्त करने का प्रयास किया। मुसलमानों के रोजा, नमाज़, हज, ताजिएदारी और हिन्दुओं के तीर्थ, व्रत मंदिर आदि सबका उन्होंने विरोध किया। कर्मकांड की उन्होंने भर पेट निंदा की। बाहरी पाखंड के लिए उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म को वे आडंबर से परे एकमात्र सत्य मानते थे।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

कबीर वाणी की दो बुनियादी विशेषताएँ हैं अथक आलोचनात्मक चेतना और प्रश्न की प्रवृति। उनकी आलोचनात्मक चेतना मूलगामी है। वह जनता को जगाने वाली और रूढ़ियों को चुनौती देनेवली है। यह प्रवृत्ति जितनी प्रखर कबीर में है उतनी उस युग के अन्य किसी कवि में नहीं है। उस समय का समाज, उसका धर्म और उसकी व्यवस्था का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जो कबीर के प्रश्नों से बच पाया हो। धार्मिक व्यवस्था की रूढ़ियों को वे अपने प्रश्नों के माध्यम से उजागर करते हैं ––

"जो खोदाय मसजीद बसतु हैं, और मुलुक केहि केरा?
तीरथ मूरत राम निवासी, बाहर कर को हेरा?"2

मैनेजर पांडेय लिखते हैं ––

"कबीर के प्रश्न उच्च वर्ग की नैतिक मान्यताओं को चुनौती देनेवाले, उनके बखिया उधेड़नेवाले हैं। उन प्रश्नों की कौंध लोगों के दिमाग पर छाए भ्रामक विचारों की धुन्ध को छाँटनेवाली है। कबीर के प्रश्न जितने सहज और बेलाग हैं उतने ही तिलमिला देनेवाले। वे कभी–कभी सुकरात की तरह अज्ञानी बनकर प्रश्न करते हैं और बड़े–बड़े पंडितों तथा मुल्लाओं के ज्ञान की पोल खोल देते हैं। कबीर की प्रश्न पूछने की प्रकृति व्यंग्य को विशिष्ट सामाजिक कला बनाती है। वह आज भी साधारण जनता को सत्ता और धर्म के ठेकेदारों से परेशान करने वाले प्रश्न पूछने की प्रेरणा देती है।"3

जिस सत्य को कबीर धर्म मानते हैं, वह सब धर्मों में है। परन्तु इस सत्य को सबने मिथ्या विश्वास और पाखण्ड से परिच्छिन्न कर दिया है। इस आडंबर को दूर करने से ही समस्त धर्म भेद के झगड़े और बखेड़े दूर हो जाते। फिर हिन्दू मुस्लिम एक्य का प्रश्न स्वयं ही हो जाता। कबीर समाज में मनुष्यत्व के विकास के लिए हृदय के धर्म अर्थात मानवीय भावों को लोकधर्म बनाने पर जोर देते हैं। इसलिए वे एक और ईर्ष्या, द्वेष, कपट, अहंकार आदि की आलोचना करते हैं तो दूसरी ओर प्रेम, करूणा, दया, उदारता आदि का विकास चाहते हैं। धार्मिक सुधार और सामाजिक सुधार का घनिष्ठ संबंध है। कबीर ने भी समाज–सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया। हिन्दुओं के जात–पात, छुआछूत, मुसलमानों के पीर–औलिया रोज़ा–अज़ान आदि पर उन्होंने चुभती भाषा में प्रहार किया। हिन्दुओं के छुआछूत का विरोध करते हुए उन्होंने कहा ––

"काहैं की कीजै पाँडे छोति विचारा। छोतिहिं से उपना संसारा।
हमारै कैंसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध। तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।"4

जन्मना कोई द्विज शूद्र या हिन्दू मुसलमान नहीं होता। कबीर डॉट फटकार कर दोनों समुदायों को कहते हैं––

"जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तौ आन वाट है क्यों नहिं आया।
जौ तूँ तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।"5

उच्चता और नीचता का संबंध कबीर ने कहीं भी व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा। उन्होंने स्वयं को जुलाहा कहने पर भी संकोच नहीं किया। सभी संत श्रम परंपरा से थे अतरू ये श्रम को आत्याधिक महत्व दिया करते थे। पोथियों के किताबी ज्ञान की शुष्कता की तुलना में वे जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों से उपजी दुनियावी ज्ञान को अधिक महत्व दिया करते थे क्योंकि कबीर ने समाज के

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

भीषण सच और उसकी भयावह संभावनाओं का साक्षात्कार किया था। पढ़ने लिखने से मानोचित्त दृष्टि आती नहीं बल्कि चली जाती हैं

"पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि भया जु ईंट।
कहै कबीरा प्रेम की लागी न एकौ छींट।"6

यही कारण है कि एक ऐसे लोकधर्म का विकास चाहते थे जिसका आधार प्रेम हो क्योंकि प्रेम ही ऐसा भाव है जो मनुष्य के हर प्रकार के भेदभाव को तिरोहित कर देता है। उसमें मनुष्यता के पोषण और स्वाधीनता के रक्षण का भाव है। कबीर के इसी उदात्त भक्ति भावना की प्रशंसा करते हुए नाभादास ने भक्तमाल में लिखा ——

"भक्ति विमुख जो धर्म सु सब अधरम करि गायो।
योग–यज्ञ व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।।
हिन्दु तुरक प्रमाण रमैनी सबदी साखी।
पक्षपात नहिं बचन सबन के हित की भाखी।।
आरूढ़ दशा है जगत पर, मुख देखी नहिंन भनी।
कबीर कानि शखि नहीं, वर्णाश्रम षट दर्शनी।।"7

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि कबीर भक्तिकाल के संभवतरू अकेले ऐसे संत कवि हैं जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और बौद्ध सभी अपना मानते हैं। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर को मुक्तिदूत और भारत पथिक कहा था। और उन्हें राजा राममोहन राय का अग्र पथिक घोषित किया था। कबीर की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि आधुनिक युग की नई चेतना के लिए प्रेरणा स्रोत है। भारतीय चिंतनधारा में जो कुछ देशज, उदार, अग्रगामी और जनोन्मुखी है उसका श्रेय कबीर को ही जाता है। जैसा कि प्रभाकर माचवे कहते हैं——

"मैं कबीर को धर्म निरपेक्षता और समाजवाद का अपने युग का सर्वश्रेष्ठ क्रांतिकारी प्रतिष्ठापक मानता हूँ।"8

संदर्भ–सूची

1. ज़की मुहम्मद, बेहद्दी मैदान में कबीर, शिल्पायन, दिल्ली, 2010, पृ. 23
2. वही, पृ. 24
3. वही, पृ. 24
4. दास डॉ. श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.36
5. वही, पृ. 36
6. ज़की मुहम्मद, बेहद्दी मैदान में कबीर, शिल्पायन, दिल्ली, 2010, पृ. 27
7. वही, पृ. 26
8. वही, पृ. 84